जैन नारी-समाज में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावलि

और

उसमें व्यंजित धार्मिकता

—श्रीमती डा. अलका प्रचण्डिया

[एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (हिन्दी), पी-एच० डी० (अपभ्रंश)]

प्राणी द्रव्य अथवा तत्त्व पर्याय धारण कर नाना गतियों में सुख-दुःख अनादि काल से भोगता रहा है। नरक गति में अनन्त दुःख और देव गति में अनन्त सुख, तिर्यंच गति में अधिक दुःख और बहुत कम सुख भोगने का अवसर मिला करता है। मनुष्य गति में भली प्रकार से दुःख और सुख भोगने की शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होती है। बड़ी बात यह है कि केवल मनुष्य गति को पाकर प्राणी संयम और तप साधना के अवसर प्राप्त करता है। इसी से वह अपने पुराने कर्मजाल को काटने का सद्प्रयास कर सकता है। अन्यगति में यह सुविधा प्राप्त नहीं है।

मनुष्य गति का जीवन व्यवस्था और आस्था सम्पन्न होता है। गृह होता है। गृहपति होता है, और गृह-स्वामिनी भी होती है। यही परिवार की इकाई कहलाती है। इसी से प्राणी कल्याणकारी संस्कार प्राप्त करता है और यहीं से मिथ्यात्व के वशीभूत अधोगति की ओर उन्मुख होता है। मानवी समुदाय और समाज की इकाई में पुरुष और नारी का समवेत महत्व और दायित्व होता है।

भारतीय तथा चीनी-संस्कृतियाँ मिलकर संसार की प्राचीनतम संस्कृति के रूप को स्वरूप प्रदान करती हैं। यूनानी संस्कृति में समाज की प्रधानता है, भारतीय संस्कृति में व्यक्ति की प्रमुखता है जबकि चीनी संस्कृति में परिवार की मुख्यता।

भारतीय संस्कृति में वैदिक, बौद्ध और जैन संस्कृतियों का समीकरण है। जैन संस्कृति में व्यक्ति तज्जन्य गुणों की वंदना का विधान है। व्यक्ति ही अपने भाग्य का निर्मापक होता है। व्यक्ति कर्म करता है और वह स्वयं ही अपने कर्मफल का भोक्ता होता है। यहाँ आरम्भ से यही प्रेरणा रही है कि सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से उसका असर राष्ट्र पर हो। राष्ट्र अथवा अन्तर्राष्ट्र सुधारना है तो व्यक्ति का

www.jainelibrary.org

सुधरना अथवा सुधारना परमावश्यक होता है। व्यक्ति-सुधार में माँ की भूमिका पहल करती है। बालक अथवा बालिका माँ-नारी के क्रोड़ में पलती है और ज्ञान का पहला पाठ वह वहीं से सीखती है। इस प्रकार नारी संतति की प्रथम शिक्षिका है।

अभिव्यक्ति एक शक्ति होती है। इसके मुख्य अवयवों में शब्द और उसके सद्य प्रयोग का उल्लेखनीय स्थान और महत्व है। इसी से भाषा बनती है और वैचारिक विनिमय सक्रिय हुआ करता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, वाचालता तथा विकथा पर्यन्त आठ दोषों से रहित शब्द तज्जन्य भाषा का प्रयोग करने की व्यवस्था-तन्त्र 'भाषा समिति' कहलाती है। सावधानीपूर्वक समय के अनुकूल और विवेक पूर्वक ऐसी शब्दावलि और भाषा का प्रयोग उपयोगी होता है जिससे भावहिंसा और द्रव्यहिंसा से बचा जा सकता है।

भारतीय धर्म और दार्शनिक स्वरूप में वैदिक, बौद्ध के साथ जैन धर्म का योगदान महत्त्वपूर्ण है। जैन धर्म में सिद्धान्त और व्यवहार का एक साथ प्रयोग, अन्य धर्म-व्यवस्था से विरलता रखता है। यहाँ आचारो परमः धर्मः कहा गया है। आचार धर्म में भाषा का सहयोग अतिरिक्त महत्त्व रखता है। जैन परिवारों में नारी ऐसी शब्दावलि का प्रयोग करती है जिनसे हिंसक मनोभावों का दूर-दूर से सम्बन्धित होना नहीं होता।

आज मनोभावनाएँ दूषित होती जा रही हैं। इसी को व्यक्त करने के लिए तदनुसार शब्द और शक्तियों की आवश्यकता पड़ा करती है। शब्द शक्ति तीन प्रकार की कही गई है। यथा—

(१) अभिधा, (२) लक्षणा,
(३) व्यंजना।

शब्द की वह शक्ति जो बिना किसी दूसरी शक्ति की सहायता के लौकिक अर्थ का बोध करा दे वस्तुतः अभिधा शक्ति कहलाती है। सामान्यतः इसी शब्दशक्ति का प्रयोग परिवार में करना चाहिए क्योंकि इससे आर्जवधर्म का परिपालन करने-कराने में यथेष्ट सहायता प्राप्त होती है। आज समुदाय और समाज में अभिधा शक्ति सम्पन्न शब्दावलि के व्यवहार को गौण स्थान प्राप्त है। लक्षणा द्वारा तथा उससे व्यंजित होने वाले अर्थ अभिप्राय का विनिमय-व्यापार श्रेष्ठ माना जाता है। यद्यपि लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग में बड़ी सावधानी और चौकसी बरतने की आवश्यकता होती है। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती। शास्त्रीय वातावरण और मनीषियों की मंडली में लक्षणा और व्यंजना सम्पन्न शब्दावलि का प्रयोग श्रेयस्कर होता है। सामान्य घर-गृहस्थी में अभिधा सम्पन्न शब्दावलि का प्रयोग हितकारी होता है।

मुहावरा में लक्षणा और व्यंजना दोनों का परिपाक रहता है। मुहावरों का प्रयोग एक वाक्य के समान होता है। यह सामर्थ्य लक्षणा द्वारा ही सम्भव है। जितने मुहावरे होते हैं वे प्रायः व्यंजना-प्रधान होते हैं। मुहावरों का अन्तर्भाव भी शब्द की इन्ही लक्षणा और व्यंजना व्यापक शक्तियों के अन्तर्गत होता है। आचार्य मम्मट ने लक्षणा का लक्षण बताते हुए कहा है कि मुख्येन अमुख्योऽर्थो लक्ष्यते..... यत्सा लक्षणा, अर्थात् जिससे मुख्य अर्थ के द्वारा अमुख्य अर्थ की प्रतीति हो वस्तुतः वही लक्षणा कहलाती है। अभिधा और लक्षणा दोनों ही जब अपना काम करके विरत अथवा चुप हो जाती हैं तब उस समय जिस शक्ति से किसी दूसरे अर्थ की सूचना मिलती है, उसे व्यंजना कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वनि की दृष्टि से प्रत्येक अक्षर और अर्थ—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना की दृष्टि से प्रत्येक शब्द जिस प्रकार भाषा में एक इकाई होता है अर्थ अभिप्राय की दृष्टि से प्रत्येक मुहावरा भी भाषा की एक इकाई ही होता है।

प्रश्न है, जैसे भाव होते हैं भावाभिव्यक्ति में उसी प्रकार की शब्दावलि और उसी प्रकार की शब्द शक्ति और उसका प्रयोग आवश्यक हो जाता है। हिंसक प्रधान परिवारों की शब्दावलि हिंसाप्रधान होगी। कसाई, शिकारी अथवा मांसाहारियों के घरों में बोली आने वाली शब्दावलि भिन्न प्रकार की होती है। अहिंसक, सत्याचरण तथा शाकाहारियों के घरों में प्रयोग में आनेवाली शब्दावलि सर्वथा अहिंसा-प्रधान होगी। यहाँ जैन परिवारों में परम्परा से प्रयोग में आनेवाली प्रचलित शब्दावलि पर संक्षेप में विचार करना हमारा मूल अभिप्रेत रहा है।

खान-पान हमारे विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। लोक में कहावत प्रचलित है कि 'जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन्न'। खाने का मन पर प्रभाव पड़ा करता है। इसीलिए भोजन की शुद्धता पर आरम्भ से ही बल दिया गया है। भारतीय परिवारों में भोजन व्यवस्था गृहिणी के अधीन हुआ करती है। यहाँ चौका की मान्यता है। यद्यपि यह रूढ़ि शब्द रूढ़ि अर्थ में ही प्रयोग में आने लगा है। क्षेत्र विशेष को लेकर लकीर खींचकर उसे अन्य से पृथक कर लिया जाता है। उसमें आम प्रवेश प्रायः वर्जित रहता है। जैन परिवारों में चौका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ चौका शब्द से इतना भर तात्पर्य नहीं है। इसके मूल में चार प्रकार की शुद्धियों का अभिप्राय अन्तर्निहित है। यथा—

(१) क्षेत्र शुद्धि, (२) द्रव्य शुद्धि,
(३) काल शुद्धि, (४) भाव शुद्धि।

जहाँ भोजन बनने और जीमने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है वह क्षेत्र शुद्ध होना चाहिए। इसी को क्षेत्र शुद्धि कहा गया है। इन घरों में रसोई का क्षेत्र सुनिश्चित बनाया जाता है जिसमें प्रवेश पाने के लिए व्यक्ति को शरीर शुद्धि और भाव शुद्धि को अपेक्षा रहती है। द्रव्य शुद्धि से तात्पर्य रसोई में प्रयोग में आने वाला द्रव्य-पदार्थ शुद्ध होना चाहिए। पके फलों, शाक-सब्जियों के साथ-साथ अन्य पदार्थों की शुद्धि पर विचारपूर्वक ध्यान दिया जाता है। जल का प्रयोग होता है तो वह छना हुआ होता है। कच्चे और अल्पावधि के शाक सब्जियों का प्रयोग निषेध। चौथी बात है कि ऐसे फलों में निगोदकायिक जीवों की प्रधानता रहती है। उदाहरण के लिए, पतली और छोटी-छोटी ककरियों तथा लोका अथवा अन्य फल पूर्णता प्राप्त करने पर ही प्रयोग में लेने का विधान निर्देश है। काल शुद्धि से तात्पर्य है दिवा भोजन का प्रयोग करना। सूर्य ऊर्जा का केन्द्र है। इसके प्रकाश में पोषणकारी तत्त्वों की प्रधानता रहती है। फल-स्वरूप हिंसापरक समस्याएँ कम, बहुत कम रह जाती हैं। जैन परिवारों में सूर्य प्रकाश का अतिशय महत्व है। यहाँ सूर्य की इसीलिए प्रतिष्ठा है। मात्र उसे 'सूर्य नारायण' कहकर नमस्कार करना और छुट्टी ले लेना यहाँ अभिप्रेत नहीं है। जैन-आचारों में सूर्यजन्य गुणों का उपयोग आरम्भ से ही किया जाता रहा है। इसीलिए सूर्य-प्रकाश में भोजन बनाने और जीमने का चर्या-विधान है। यही वस्तुतः काल-शुद्धि कहलाती है। इन त्रय शुद्धियों से भी महत्वपूर्ण है भाव शुद्धि। भोजन करने-कराने के उद्देश्य, उपयोग तथा भावना पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाता है। मन से, वचन से तथा काय से शुद्धि अर्थात् शुभ भावपूर्वक भोजन करना-कराना अनिवार्य है। चित्त में दुराव अथवा छिपाव के साथ भाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि में स्पष्ट बाधा है। चौकापूर्वक भोजन अतिथि—सुयोग्य पात्र को सहज जुटाना वस्तुतः आहार-दान कहलाता है। आज इस प्रकार के भोजन का प्रायः अभाव होता जा रहा है तथापि शुद्ध जैन परिवारों में यह चौका सम्पन्न भोजन-पद्धति आज भी समादृत है। इस प्रकार चौका शब्द वस्तुतः पारिभाषिक कहा जाएगा।

इसी प्रकार काटना शब्द जैन परिवारों में गृहीत नहीं किया गया है। शाक अथवा फलों को 'काटने' की अपेक्षा 'बनारना' शब्द को गृहीत किया गया है। बनारना और काटना शब्दों के उच्चारण में ही भावात्मक व्यंजना अहिंसक तथा हिंसक मुखर हो उठती है। काटना में हिंसा के भाव व्यंजित होते हैं। बनारना में सुधारना तथा सुव्यवस्था की भावना मुखरित है। अतः जैन महिलाओं द्वारा इसी शब्द का प्रयोग प्रायः आज भी प्रचलित है। जिन परिवारों में महिलाओं द्वारा शाक बनारना तथा फलों और सब्जियों का बनारना प्रयोग सुनने को मिलता है तो यह सहज में ही ज्ञात हो जाता है कि यह महिला निश्चित ही जैन संस्कृति से दीक्षित रही है। शब्द-प्रयोग से समस्त संस्कृति का परिचय सहज में ही हो जाता है।

कूटना शब्द लीजिए। इसका प्रयोग पर-पदार्थ को कष्टायित करने के लिए होता है। दालें कूटी जाती है। दाल कूटना के स्थान पर जैन महिलाएँ प्रायः 'दालें छरना' प्रयोग में लाती हैं। छरने में दाने से छिलका अलग करने का भाव व्यंजित है। इसी परम्परा में जलाना शब्द लीजिए। 'दिया जलाना' जैन परिवारों में प्रयोग नहीं किया जाता। 'दीप बालना' यहाँ गृहीत है। जलाना शब्द एकदम हिंसक मनोवृत्ति का परिचायक है। इसी प्रकार दीप-बुझाना शब्द भी हितकारी भाव व्यक्त नहीं करता इसीलिए यहाँ इस अभिप्राय के लिए 'दीप बढ़ाना' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

जैन परिवारों में निबटना शब्द प्रचलित है जिसका अर्थ है निवृत्त होना अर्थात् नैत्यिक क्रियाओं से विशेषकर शुद्धि से सम्बन्धित सभी क्रियाओं में फिर चाहे वह लघुशंका हो अथवा दीर्घशंका इत्यादिक प्रयोजनार्थ निबटना शब्द का ही प्रयोग होता है। खाना शब्द शुभार्थी नहीं कहा जाता अतः यहाँ भोजन करने के लिए खाना के स्थान पर 'जीमना' शब्द प्रचलित है। उपर्युक्त सभी शब्द जैन परम्परा के हैं अर्थात् इनका सीधा सम्बन्ध श्रावक परम्परा से रहा है जिसका मूलाधार श्रमण अथवा जैन संस्कृति रही है।

इन शब्दों की भांति हिन्दी में अनेक मुहावरों का भी प्रचलन है जो हिंसा वृत्ति का बोधक है। श्रमण समाज में ऐसे वाक्यांश अथवा मुहावरों का प्रायः प्रचलन वर्जित है। आग फूंकना मुहावरा ही लीजिए। इसमें जो क्रिया है उससे स्पष्ट हिंसा का भाव उभर कर आता है। अर्थ है बहुत झूठ बोलने के लिए। आग लगाना अर्थात् झगड़ा खड़ा करना। कलेजा खाना अर्थात् साहस होना पर शब्दार्थ है मांसाहार की मनोवृत्ति का बोधक। कान काटना अर्थात् अत्याचार करना, खून के घूँट पीना अर्थात् बड़ा कष्ट सहन करना। गला घोंटना अर्थात् अत्याचार करना। घर फूंकना अर्थात् बरबाद करना। छाती जलाना अर्थात् दुःख देना। प्राण खाना अर्थात् बड़ा परेशान करना। मक्खी मारना अर्थात् बेकार बैठना। लहू के घूंट पीना अर्थात् बड़ी आपत्ति सहन करना। लहू चूसना अर्थात् बहुत परेशान करना। सिर काटना अर्थात् बड़ी तकलीफ देना। जीती मक्खी निगलना अर्थात् जानकर हानि का काम करना। शेर मारना अर्थात् बहादुरी का काम करना। आदि अनेक मुहावरे हिन्दी में प्रचलित हैं जिनके उच्चारण मात्र से हिंसात्मक मनोभाव उपजने लगते हैं। श्रमण समाज में ऐसे मुहावरे तथा उनके प्रयोग प्रायः वर्जित है।

इस प्रकार उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्युदय का मूलाधार आचार है। आचार के आधार पर विकसित विचार किसी भी जीवन का निर्मापक तथा आदर्श और शोभा हुआ करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विचार की जन्मभूमि आचार ही है।

आचार और विचार सम्पन्न जीवन चर्या को जब कभी प्रेषणीयता की जरूरत पड़ती है तब शब्द और भाषा की आवश्यकता हुआ करती है। शब्द यद्यपि स्थूल होते हैं और इस स्थूल साधन के द्वारा सूक्ष्म सम्पदा को अभिव्यक्त करने का प्रयास हम आरम्भ से ही करते आ रहे हैं। भाव और विचार से आचार की साज-सँभार हुआ करती है और उसे व्यक्त करने के लिए तदनुसार शब्दावलि की अपेक्षा होती है। जैन नारी समाज में अहिंसक, विकास बोधक शब्दों का प्रयोग सावधानीपूर्वक करने का विधान है। हित-मित-प्रिय वाणी के व्यवहार का निर्देश भाषा समिति में किया गया है। साथ ही कम से कम भाषा के व्यवहार से काम चलाना हितकारी है। इससे वाचालता से बचना होता है। जैन परिवारों में इसीलिए रात्रि में गोचरी प्रक्रिया के लिए कोई स्थान नहीं है। इस चर्या का उत्कृष्ट रूप हमें आज जैन संतों में सहज ही परलक्षित है। यहाँ पूरी की पूरी चर्या में सात्विकता है, शालीनता है और है समसावप्रवणता। कहावत है, जैसे भाव वैसी ही भाषा। अहिंसक की भाषा सदा अहिंसक ही होगी। भावाभिव्यक्ति के अनुसार ही शब्दों का प्रयोग हुआ करता है। इस प्रकार जैन नारी समाज में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावलि और उसमें व्यंजित धार्मिकता बोध हमें सहज में ही हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. भारत वाणी,
2. हिन्दी मुहावरा कोश
3. मुहावरा मीमांसा
4. अच्छी हिन्दी
5. अभिधान चिन्तामणि कोश
6. हिन्दी शब्द सागर
7. अपभ्रंश भाषा में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावलि
8. जैन सिद्धान्त कोश
9. क्रिया कोश
10. तत्वार्थसार
11. मूलाचार
12. जैन हिन्दी कावियों का काव्य शास्त्रीय मूल्यांकन
13. हिन्दी का आदि काल
14. जैन लाक्षणिक शब्दावलि
15. भाषा विज्ञान
16. काव्य प्रकाश
17. हिन्दी व्याकरण
18. हिन्दुतान की पुरानी सभ्यता
19. दर्शन और जीवन
20. बोल चाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org